गढ़वाली भाषा और साहित्य

श्रीअच्युतानन्द घिल्डियाल
एम्० ए० (प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति)

वैशाख, कृष्ण षष्ठी, गुरुवार २०१९ विक्रमाब्द : १८८४ शकाब्द
२६ अप्रैल, १९६२ खृष्टाब्द

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।। (कालिदास)

गढ़वाल, उत्तरप्रदेश में ही नहीं, अपितु समस्त भारत में बदरीनारायण, केदारनाथ, गंगोत्री एवं जमनोत्री— चार पवित्र तीर्थस्थानों के नाम से सुप्रसिद्ध है।

महाकवि कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'कुमारसम्भव' में नगाधिराज हिमालय की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए गढ़वाल में रहनेवाली प्राचीन जातियों तथा यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, कोल, भील एवं नाग जातियों का भी विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। कुबेर यक्षों का एक प्रतापी राजा था। बदरिकाश्रम के ऊपर चौखम्बा, जिसकी चोटी २० हजार फुट के ऊपर है, का पूर्वार भाग अलकनन्दा और सरस्वती नदी का उद्गम है। इसी पावन अलकनन्दा नदी के तट पर अलका उस कुबेर की राजधानी थी, जिसका महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' काव्य में उल्लेख किया है। मणिभद्र यक्ष के नाम से आज भी भारत की उत्तरी सीमा का अन्तिम गाँव 'माणा' अपनी ऐतिहासिक परम्परा को बता रहा है।

अठारह पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने 'स्कन्दपुराण' में उत्तराखण्ड की पवित्र भूमि का वर्णन करते हुए 'केदारखण्ड' नाम से एक पृथक् खण्ड का ही संकेत किया है। उसमें गढ़वाल के छोटे-से-छोटे तीर्थस्थानों का इतिहास व्यक्त किया है। गढ़वाल के प्राचीन नाम देवभूमि, तपोभूमि, बदरिकाश्रम, उत्तराखण्ड आदि उपलब्ध होते हैं।

सन् १४०० ई० के पश्चात् गढ़वाल में पँवार-वंश की स्थापना हुई और इसी समय १५वीं शताब्दी में ही इस भू-भाग का नाम गढ़वाल पड़ गया। ५२ गढ़ों के आधिक्य होने के कारण—गढ़ शब्द से 'वाला' प्रत्यय लगाने से ही 'गढ़वाल' प्रसिद्ध हुआ।

प्राचीन समय में छोटे-छोटे ठकुरी राजाओं, सरदारों और थोकदारों के किले थे। उन राजाओं और सरदारों के राज्य-विभागों के नाम भी पृथक्-पृथक् थे। ये अब परगनों और पट्टियों के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1]

पँवारवंशीय महाराजा अजयपाल ने गढ़वाल के सभी ठकुरी राजाओं और सरदारों को जीतकर उनके राज्यों को एक साथ मिलाकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया। तबसे इसका नाम गढ़ों के बाहुल्य से 'गढ़वाल' पड़ गया।

महर्षि वेदव्यास ने व्यासगुफा बदरिकाश्रम में बैठकर १८ पुराणों की रचना की। जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य ने जोशीमठ बदरिकाश्रम में निवास कर वेदों पर १६ भाष्य लिखे। यह भूमि अनेक ऋषियों की पवित्र निवासभूमि होने से तपोभूमि नाम से भी पौराणिक काल में सुप्रसिद्ध थी।

---

१. गढ़वाल का इतिहास : पं० हरिकृष्ण रतूड़ी।

अर्जुन ने खांडववन में शिव को प्रसन्न करके गढ़वाल में ही गाण्डीव धनुष की प्राप्ति की थी। पौराणिक संकेतानुसार, इस पावन-भूभाग बदरिकाश्रम के निकट से ही पाण्डवों ने स्वर्गारोहण किया था।

गढ़वाल की सीमा

इस गढ़वाल का भू-भाग ग्यारह हजार वर्गमील तक विस्तृत है। यहाँ की जनसंख्या १५ लाख है। इसका उत्तरभाग तिब्बत तक फैला है। दूसरा भाग नेपाल तक विस्तृत है। तीसरा भाग पंजाब के पहाड़ी प्रदेश शिमला से मिला है। चौथा भाग जिला बिजनौर और सहारनपुर तक फैला है।

प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं को देखते-देखते यहाँ के लोग प्रकृति के पुजारी, कर्मठ एवं परिश्रमी हो गये हैं। पहले सम्पूर्ण गढ़वाल एक ही था, किन्तु गुर्खाली आक्रमण होने पर दो भागों में विभक्त हो गया। अलकनन्दा का पूर्वभाग टिहरी-राज्य ने और पश्चिम का भाग अँगरेजों ने टिहरी-नरेश से, सहायता करने के रूप में, ले लिया था।

आज देश की सुव्यवस्था एवं दृढता और सीमा के नैकट्य की दृष्टि से इन दो जिलों को भी उत्तरप्रदेश-सरकार ने चार जिलों में विभक्त कर दिया—गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, चमोली गढ़वाल और उत्तरकाशी गढ़वाल। इसके पूर्व अलमोड़ा, नैनीताल और पिठोरागढ़ को मिलाकर कुमाऊँ-प्रमण्डल था, किन्तु अब समस्त गढ़वाल के जिलों को उत्तराखण्ड-प्रमण्डल नाम से सम्बोधित किया जाने लगा है।

इस समस्त विस्तृत भूभाग में बोली जानेवाली भाषा का नाम गढ़वाली है। इस गढ़वाली भाषा के अध्ययन के लिए प्रमुख स्रोत हैं—गढ़वाल के लोकगीत, गढ़वाल की लोककथाएँ और लोकोक्तियाँ। लोकगीतों में मांगल, जागर, पंडओ, पखाणो इत्यादि अत्यधिक प्राचीन हैं। इनके द्वारा ही गढ़वाली भाषा का प्राचीन रूप भली भाँति अवगत होता है। साहित्य में प्राचीन परम्पराएँ अन्तर्भुक्त होती हैं। औजी (दर्जी) हुड़क्या, बद्दी, घड्याला आदि जातियों की परम्परा के गीतों में गढ़वाली भाषा का प्राचीनतम रूप परिलक्षित होता है।

कुछ विद्वान् गढ़वाली भाषा की उत्पत्ति अपभ्रंश से और कुछ विद्वान् शौरसेनी अपभ्रंश से मानते हैं। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि खस भी गढ़वाल के निवासी थे। खस दरद-वंश के माने गये हैं। दरद भाषा और गढ़वाली भाषा का परस्पर अत्यधिक भेद विदित होता है। पैशाची या दरद भाषाओं का गढ़वाली से किसी प्रकार की भी समता नहीं दिखती। श्रीचटर्जी ने पहाड़ी भाषाओं को पैशाची, दरद अथवा खस प्राकृत पर आधृत मानकर मध्यकाल में उनपर राजस्थान की प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव बताया है।

डॉ० ग्रियर्सन अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इण्डिया' में मध्यपहाड़ी भाषा गढ़वाली एवं कुमाऊँनी को राजस्थानी का एक रूप मानते हैं।

साहित्याचार्य पं० बालकृष्ण शास्त्री की पुस्तक 'कनकवंश' के अनुसार गढ़वाल में बहुत दिनों तक संस्कृत भाषा का ही प्रचार रहा था।

प्रो० मैक्समूलर एवं श्रीचन्द्रमोहन रतूड़ीजी के विचार से गढ़वाली भाषा हिन्दुस्तान की पृथक् भाषा है।

उस युग में धार्मिक कार्यों, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद आदि विषयों के अत्यधिक प्रचार एवं प्रसार से संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग होता रहा। यहाँतक कि सर्वसाधारण भी धार्मिक कार्यों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही प्रयोग करते हैं।

श्रीहरिरामजी धस्माणा ने अपनी पुस्तक-'वेदमाता' में युक्ति-संगत प्रबल उदाहरण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आर्य लोग गढ़वाल उत्तराखंड की पवित्र भूमि के निवासी थे, और उनका कहना है कि गढ़वाल की आदिभाषा में ऋग्वेद की ऋचाएँ हैं। वैदिक संस्कृत-साहित्य के एवं गढ़वाली भाषा के शब्दों की समता दिखाते हुए उन्होंने बताया है कि आर्यों की यही निवासभूमि थी। श्रीधस्माणाजी ने यह भी लिखा है कि गढ़वाली भाषा के गीत एवं चौफला ही ऋग्वेद की ऋचाएँ हैं। गढ़वाली भाषा और वैदिक संस्कृत के समानार्थक शब्दों पर एक दृष्टि डालिए—

वैदिक संस्कृत-शब्द	गढ़वाली भाषा के शब्द
१ कतमत	१. कतमत (कँवै) शीघ्रता
२. भव्य	२ भोल (आनेवाला कल)
३ व्यय	३. व्याले (व्यतीत हुआ कल)
४. स्या	४. स्या (वह स्त्री)
५. स्यो	५. स्यो (वह आदमी)
६. समेति	६ समेत (सहित)
७. केन	७. केन (किस प्रकार)
८. गाध	८. गाड (बरसाती छोटी नदी)
९. गौरी	९ गौड़ी (गाय)
१०. कति	१०. कति (कितने)
११. पाथो	११. पाथो (चार सेर मात्रा का मापदंड)
१२. माणो	१२. माणो (८ छटाँक का सेर मापदंड)
१३. द्रोण	१३. दोण (१६ पाथे का मापदंड)
१४. खार	१४. खार (२० द्रोण की १ खार)
१५. सर्पयति	१५. सपोड़नो (लेशदार चीज को सपोड़ते हुए खाना)
१६. पर्यंक	१६. पर्या (मट्ठा बिलोने का बरतन)
१७. सामान्या	१७. समनन (नमस्कार)
१८. गोष्ठ	१८. गोठ (खेतों में जिस स्थान पर गायें रहती हैं।)

१६. अस्मा	१६. घेमा (इसमें)
२०. उध	२०. उब्ब (ऊपर)

स्वामी दयानन्दजी ने भी यह माना है कि आर्य लोग भोट तिब्बत में सबसे पहले गढ़वाल में ही आये।

गढ़वाली और राजस्थानी में अत्यधिक समानता होने के कारण डॉ० ग्रियर्सन ने यह माना है कि गढ़वाली एवं राजस्थानी की उत्पत्ति अपभ्रंश से ही हुई है।

गढ़वाली भाषा की वर्त्तमान क्रिया के एकवचन का प्रयोग छह भारतीय भाषाओं में पाया जाता है। जैसे—अंगिका, बँगला, गुजराती, मालवी, नेपाली एवं मैथिली।

मालवी भाषा और साहित्य में गढ़वाली के अधिकांश लोकगीतों के शब्द एवं भाव पूर्णसाम्य के साथ है। गढ़वाली का मालवा पर एवं मालवा का गढ़वाली पर किसी पूर्वपरम्परा की समानता का सम्बन्ध हो सकता है।

'मालवी भाषा और साहित्य' में डॉ० श्रीश्याम परमारजी ने गढ़वाली भाषा और मालवी भाषा की समान शब्दावली का उदाहरण देते हुए दो गीत प्रस्तुत किये हैं। गढ़वाली और मालवी के शब्दों में अत्यधिक समानता प्रकट होती है। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में प्राप्त होने पर दोनों भाषाभाषी प्रदेश के लोगों का पारस्परिक सम्बन्ध परिलक्षित होता है। मालवी के अनेक शब्द गढ़वाली भाषा में और उसी भाँति गढ़वाल भाषा के शब्द मालवी भाषा में हैं।

भारत का उत्तराखण्ड धार्मिक भूमि एवं तीर्थस्थान होने के कारण वहाँ देश के सभी भागों से आने-जानेवालों का ताँता लगा रहा है, जिससे गढ़वाल में अन्य भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा। उस प्रभाव को गढ़वाली भाषा से दूर करना कठिन है। इस प्रकार, विभिन्न प्रदेश के यात्रियों के दीर्घकाल तक आवागमन के कारण गढ़वाल में वे अपने यहाँ के सैकड़ों शब्दों को छोड़ जाते थे। संक्षिप्तता एवं नवीनता के कारण यहाँ की जनता ने उन शब्दों को अपना लिया और भाषाविज्ञान की गंगा में घिस-पिटकर वे शब्द अपना वास्तविक रूप बदलकर यहीं के हो गये।

कुछ लोगों की ऐसी भी धारणा है कि यात्रा करनेवाले धार्मिक श्रद्धालु भक्तों को यहाँ की देवभूमि पावन लगी और यात्रा-समाप्ति के पश्चात् वे यहीं रहने भी लगे। यहाँ रहते-रहते उनके शब्द गढ़वाली भाषा में घुल-मिल गये। अपनी उदारता के कारण उन शब्दों को गढ़वाली भाषा ने आत्मसात् भी कर लिया।

दसवीं शताब्दी में ही गढ़वाली का लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। बदरीनाथ, देवलगढ़, देवप्रयाग इत्यादि स्थानों में संस्कृत-मिश्रित गढ़वाली भाषा के प्राचीन लेख हैं।

पुरातात्त्विक अन्वेषण के पश्चात् गोपेश्वर एवं उत्तरकाशी के मन्दिरों में दो त्रिशूल प्राप्त हुए हैं, जिनमें संस्कृत में कुछ लिखा है। अमरसिंह थापा ने इस मन्दिर की मरम्मत की थी और इसमें अन्दर का दालान भी बनवा दिया था।[1]

---

१. N. W. P. Gazetteer, V. 11 and 12.

पवित्र केदारखण्ड मे अनकमल्ल ने शक १११३ (सन् ११६३ ई०) मे योगेश्वर मन्दिर बनवाया। जोशीमठ का ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध है। यहाँ विष्णु का मन्दिर, गणेश और सूर्य की मूर्त्तियाँ हैं। ये सभी गुप्तकाल के हैं। जोशीमठ में नृसिंहमन्दिर के सामने नवदुर्गा की सात फुट ऊँची एवं गणेश की दो फुट ऊँची सुन्दर मूर्त्ति है। ये सभी मूर्त्तियाँ गुप्तकालीन मानी जाती हैं।[१]

मंधाल, श्रीनगर गढ़वाल से छह मील की दूरी पर, हरिद्वार जाती हुई सड़क पर स्थित एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर मे एक स्त्री का सिर मिलता है, जो कुछ अस्पष्ट और कटा हुआ है। पाडुवाला ब्रह्मपुर की राजधानी था, जिसे ह्वेनसांग ने भी देखा था।

कालीमठ की पार्वती और सूर्य की मूर्त्तियाँ वस्तुतः आश्चर्यजनक हैं। इस प्रकार पुरातत्त्व-शास्त्र की सामग्री आदि भी गढवाल की कलाप्राचीनता के द्योतक है।

पांडुकेश्वर से कतुरी राजाओं के चार ताम्रपत्र पाये गये थे, जिनमें तीन अब बदरीनारायण मे रखे हैं। उनकी भाषा भी १०वीं-११वी शताब्दी की है। देवलगढ, श्रीनगर एवं कमलेश्वर के शिव के मन्दिर को भी अजयपाल चन्दवंशी ने सन् १३५८ ई० में बनवाया।[२]

प्रारम्भ के शिलालेखों मे ऐसा अवगत होता है कि गढवाल में बहुत समय तक लिखने-पढ़ने की भाषा संस्कृत थी।

१. देवप्रयाग के मन्दिर में महाराजा जगतपाल के सन् १३३५ ई० वाले दानपत्र के शब्द इस प्रकार हैं—

श्री संवत १४१२ शाके १२७७ चैत्रमासे शुक्लपक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतापाल—रजवार ले शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट सर्वभूमि जाधिनी कीती जा योटो भट म्रिल का भट लछमन का सट दिनो सर्वकर अकर सबदान गुदान नोट की नदाली भूनै की औंताली रामचन्द्र ले गो नी लिखिन यानक ये दुलखी जे तु परसोरा दूमरू महज यामा चललू सु रजना जै भाग्य जगतपाल रजवार ले दिनी तै भास करीक ली रजवारा शंकरनन्द को कृष्ण भारती को दीना भारत्रगम देव पर मौदा सुरगु सदजवान की तुलुह मीर गां गृह सांधी।

२. देवलगढ़ में महाराजा अजयपाल का सन् १४६० ई० का लेख—

अजैपालको धरम पार्थो भण्डारी करौंदक।

३ देवप्रयाग के रघुनाथजी के मन्दिर का यह निम्नांकित लेख महाराजा पृथ्वीशाह (१६६४) का है—

श्री रामो विजयते। श्री गणेशाय नमः

अथास्मिन् श्री शाके १५८६, संवत १७२१ वैशाखमासे शुक्लपक्षे प्रतिपद तिथौ-प्रथमदिने शुक्रवारे एंद्रयोगे श्री रघुनाथ ज्यू का देवालय तामा का पात्र चढाया श्रीमहाराज पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भण्डारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पत्निपरम्

---

१ Journal Asiatic Society of Bengal, V. 5, P. 3472.

२ फ्रूरस की पुस्तक : List of monuments of N. W. Provinces of Abath.

विचित्र श्री मथुरा बौराणी ज्यू ल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भण्डारी ज्यूल पाट चढाया प्रतिष्ठा करायी कुटुम सहित मठपति हरिमिश्र पुरोहित जनार्दन श्री हर्ष पण्डित न लेख्यो देवीदास भगवानदास कृष्णदास पुरीजा सर्जाय देवालय सम्हाचो शुभम् ।

४. मालधूल, टिहरी गढ़वाल में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की नींव के पत्थर पर सन् १७८५ ई० का लेख—

संवत् १८४२ का भादौं १५ गते श्री लक्ष्मीनारायण को मठ लायो दुटेऊं पीढ़ियों को थयो। अब श्री धर्नाराम डोभाल श्री सिरमौरिया राज धैक गुरुजों गुसेयूं माल्ण कों श्री महाराज जैकृत शाह को एज थामण कौ मदत ल्याथों तब अन्तराम डोभाल कौ उधेपुर की कमिणायी दिनी कमिणार्थी मा झगडराज सिरमौरिया को हुक्म होया मठ चिणीक पूरो होयो ।

ऊपर के चारो लेखों में से १, २, ३ लेखों में संस्कृत एवं गढ़वाली-मिश्रित शब्दों का, किन्तु चतुर्थ लेख में शुद्ध गढ़वाली भाषा का प्रयोग है, और यह टिहरी में बोली जाने-वाली बोली है।

गढ़वाली भाषा में मांगल, जागर, कुलाचार आदि लोकगीत अत्यधिक प्राचीन हैं। 'ढोल सागर' गढ़वाली भाषा का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'ढोल सागर' के अनुसार ढोल-दमाऊं बजाते हुए गढ़वाल के औजी महाभारत के कथा-प्रसंगों को गढ़वाली भाषा में कई पीढ़ियों से गाते आ रहे हैं। पंडौऊ नचाने की लम्बी प्रथा के अनुसार कई घंटों तक यह गीत सामूहिक नृत्य में चलता रहता है। उस समय ढोल-दमाऊ की ध्वनि एवं उन गीतों की ओजस्विनी भाषा के साथ नाचनेवालों (पाण्डव पाँचों भाइयों) में से एक नाचता हुआ अपना प्रभाव कृत्यों एवं वाक्पटुता को दिखाकर लोगों को आश्चर्य-चकित कर देता है।

वे गीत अधिकतर वीररस-युक्त होते हैं एवं उनकी भाषा अलंकार-पूर्ण होती हैं। गढ़वाल, औजी, घड्याला, बद्दी एवं हुड़क्या कहे जानेवाले लोगों के पास अथाह लोकगीतों की सम्पत्ति है। वे वस्तुतः गढ़वाली भाषा के आशुकवि हैं।

गढ़वाली भाषा की उपबोलियाँ

डॉ० ग्रियर्सन[1] ने गढ़वाली के विषय में यह लिखा है कि—यह स्थान-स्थान पर बदलती गई है। यहाँतक कि प्रत्येक परगने की बोली का अपना भिन्न ही रूप है। प्रत्येक बोली अपने स्थानीय नाम से पृथक् सम्बोधित होती है।

डॉ० ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे-ऑफ् इंडिया' में गढ़वाली भाषा के आठ भेद किये हैं—

(१) श्रीनगरी, (२) नागपुरिया, (३) दसौल्या, (४) बधाणी, (५) राठी, (६) माँझ कुमैयाँ, (७) सलाणी, (८) टिहरयाली।

१. डॉ० ग्रियर्सन : भारत का भाषा-सर्वेक्षण, भाग १, खंड १, पृ० ३३६

इन आठों उपबोलियों के पृथक्-पृथक् उदाहरण तथा उनका परस्पर भेद इस प्रकार है—

१. *श्रीनगरी*—कै आदमी का द्वी नौन्याल छया। उंमान छोटा नौन्याल न अपणा बाबा जी मां बोले—हे बाबाजी, विरसत मात मेरो जो हिस्सा छ मैं सणी दे देवा।

२. *नागपुरिया*—कै बैख का दुई रलौंडा छया। तौं मधेलुड़ा लौंड़ान बुबा ले बोले—हे बुबा, जो मेरो बांटो माल को मो मैं दे।

३ *बधाणी*—कै आदमी का द्वी छिचोड़ी छिया। उनू मधे मना छिचोडी न अपणा बुबा जी मु बोलो कि हे बुबा जी माल असबाब म मेरो बांट मैं सणी न्यारो दे द्या।

४. *दसौल्या*—कै आदमी का दुई लडीक छया। तनू मा कणिसा न बोलो हे बुबा माल मांगन को जो मेरो बांटो हो सो मैं देवा।

सलाणी—के मणा का दुई नौना छया। ऊं मां काणसान अपणा बुबा मां बोल्ये—हे बुबा जी माल ताल मा जु मेरो बांटो होव सो मों दी देवा।

६. *राठी*—कै मनख का द्वी लौड छया। ऊ मा नान लौड़न बाबू गणी बोल कि थार बाबू जो कुछ चीज वस्त मांयन बांटो मी गणे दे।

७ *टिहरियाली*—एक मणा का द्वी नौन्याल थया। ऊंमान कणसान अपणा बुबा मां बोले कि हे बाबा जी जु विरसत को बांटो मेरो छ मैं दी द्या।

(किसी आदमी के दो लड़के थे। उनमें छोटे लड़के ने अपने पिता से कहा—हे पिताजी, सम्पत्ति में जो मेरा हिस्सा है, उसे मुझे दे दो।)

अंगिका भाषा के गद्य में भी डॉ० ग्रियर्सन ने इसी गढ़वाली गद्य के भावों को ही व्यक्त किया है—

कोय आदमी के दू बेटा छलै। ओकरा में से छोटका बाप से कहलकै कि हो बाप, जे कुछ धन सम्पत छौं, ओय में से हमरो हिस्सा होय छै, से हमरा दै द।

श्रीटीकारामजी शर्मा 'कुंज' ने गढ़वाली भाषा की केवल तीन ही मुख्य बोलियाँ मानी हैं—

१. *टिहरी-श्रीनगरी बोली*—एक बगत मा द्वी नामी जोधा छा। एक पूरब का कोणा मा, अर दोसरु पच्छिम का कोणा मा रन्दो छौ।

२. *रवाईं-जौनपुरी बोली*—यक्क समय मु दू बेग्या बांक्या बीर हो, यक्क पूरब छोड़ू हैक्कु पच्छिम छोड़ू रौं।

३. *चौदकोट-सलाणी बोली*—एक बैन मा द्वी भारी नामी भेड छया। एक पूरब म है क पच्छिम मा राहन्दो छयो।

(एक समय में दो नामी योद्धा थे। एक पूर्व के कोने में और दूसरा पश्चिम के कोने में रहता था।)

प्राय: गढ़वाली की सारी बोलियाँ इन्हीं तीन प्रकार की बोलियों में अन्तर्भुक्त हो जाती हैं। हाँ, कहीं-कहीं साधारण अन्तर एवं उच्चारण में किंचित् भेद है। सीमावर्त्ती

प्रदेशों की बोलियाँ द्वीलाणी (मिश्रित) पाई जाती हैं। गढ़वाल की मुख्य भाषा गढ़वाली ही है, जो श्रीनगर-टिहरी के आस-पास बोली जाती है। इसी भाषा में गढ़वाली भाषा का समस्त साहित्य मिलता है।

गढ़वाल लोकगीतों की धरती है। गढ़वाली में लिखित-अलिखित पाये जानेवाले गीतों का अथाह भाण्डार है। यहाँ का जन-जन और कण-कण 'गितांग' (गायक) है। पर्वतों, नदियों, नालों, झरनों, सुरभित मन्द समीर, विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षियों, खेतों मे काम करनेवाले स्त्री-पुरुषों, घसियारिनों (घास काटनेवाली स्त्रियों) आदि की सुमधुर गीत-ध्वनि निःसंकोच सरल हृदय के भावों से द्रवीभूत एवं आनन्द-विभोर हो झरती रहती है और यात्रियों के मन-प्राण को आह्लादित करती रहती है।

गढ़वाल में लोकगीतों के कई रूप मिलते हैं। अभी तक उनका ठीक-ठीक वर्गीकरण नहीं हो पाया है, फिर भी हम उन्हे शैली, विषय एवं रस के दृष्टिकोण से १२ भागों में विभक्त कर सकते हैं—
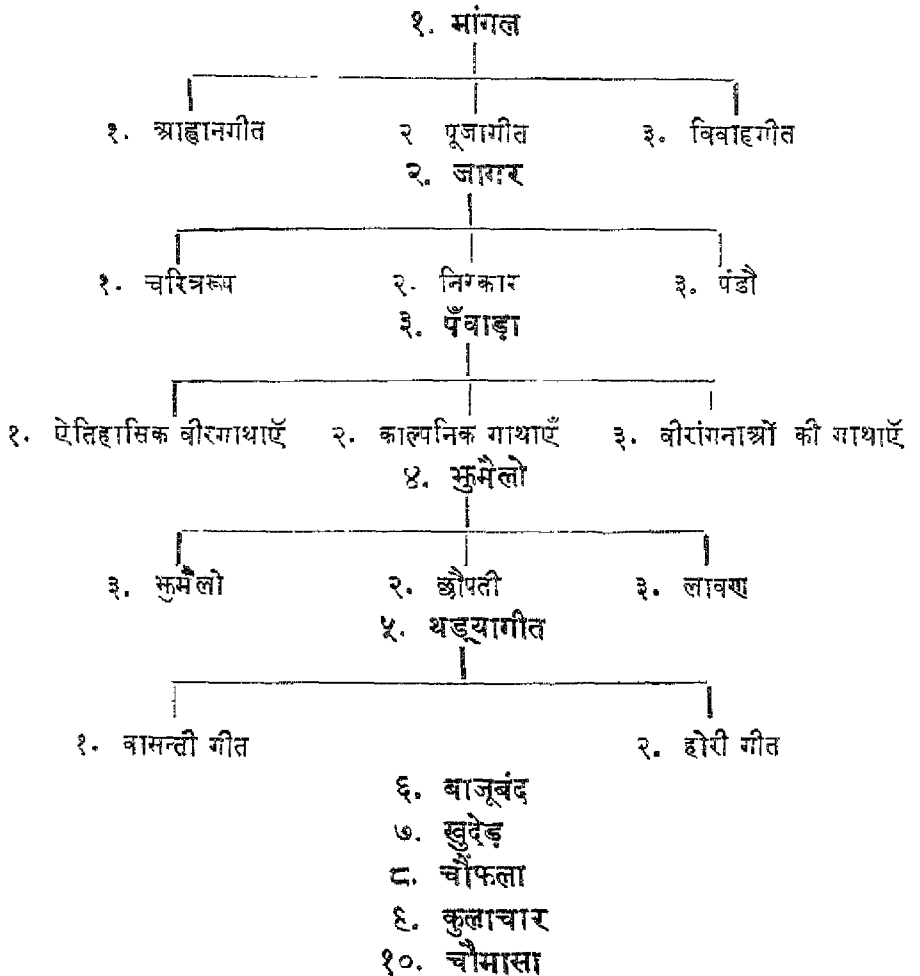
११. बारामासा।
१२. पटखांई में छुड़ा।

१. *मांगल*

इसे प्रत्येक शुभकार्य के प्रारम्भ में विघ्नों को दूर करने एवं मंगलकामना के लिए, प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियाँ गाती हैं। वेद में भी गणेश का सबसे पहले आह्वान किया जाता है।

ये मांगल तीन प्रकार के होते हैं—आह्वानगीत, पूजागीत और विवाहगीत।

(क) आह्वानगीत

बीजी जावा बीजी हे खोली का गणेश।
बीजी जावा बीजी हे मोरी का नारैण॥
बीजी जावा बीजी हे खतरी का खैडो।
बीजी जावा बीजी हे कुन्ती का पंडौऊ॥

उठ जाओ उठ जाओ, हे द्वार के गणेश। उठ जाओ, उठ जाओ हे खिड़की नारायण। उठ जाओ, उठ जाओ हे क्षत्रिय की तलवार। उठ जाओ, उठ जाओ हे कुन्ती के पाडवो!

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में अग्निदेवता की प्रार्थना की गई है। अग्नि को तीनों लोकों का देवता माना गया है और वह देव अपनी आहुतियों से यजमान की दी हुई वस्तु को उसी देवता के पास पहुँचा देता है, अतः, अग्नि को देवताओं का सदेशवाहक माना गया है।

'अग्निमीळे पुरोहितम्' आदि मन्त्रों की भाँति गढ़वाली भाषा में मांगलों के पूजा-गीतों में अग्निदेव की स्तुति की गई है।

(ख) पूजागीत

ऐला अगनि मेरा मातलोक मेरा मातलोक।
त्वे बिना अग्नि ब्रह्मा भूखो रैगे ब्रह्मा भूखो रैगे॥

हे अग्नि, आओगे—तुम मेरे मर्त्यलोक में। हे अग्नि, तेरे बिना ब्रह्मा भूखा रह गया।

(ग) विवाहगीत

दे देवा बाबा जी कन्या को दान।
दानूं मा दान होलो कन्या को दान॥
हीरादान मोतीदान, सब कोई देला।
तुम देल्या बाबा जी कन्या को दान॥
जिमिदान भूमिदान सब कोई देला।
को भागी देला, कन्या को दान॥

'मालवी भाषा और साहित्य' के लोकगीतों में गढ़वाली और मालवी का शब्द-साम्य स्पष्ट करते हुए डॉ० श्री श्याम परमारजी ने इसी गढ़वाली विवाह-मंगलगीत को उद्धृत किया है।

(हे पिताजी, आप कन्यारूपी दान को दे दो। सभी दानों में कन्या का दान ही अच्छा दान है। हीरारत्न का दान मोतीरत्न का दान सभी देंगे, किन्तु पिताजी आप कन्या का ही दान देंगे। भूमि आदि का दान सभी देंगे, किन्तु कन्या का दान कोई भाग्यशाली ही दे सकेगा।)

२. *जागर* (गाथाएँ)

इसमें देवता नचाने की प्रथाओं का प्रचलन है। वस्तुतः, जागर गीत भक्ति रस के सुन्दर काव्य हैं। सभी की आधारभूमि धार्मिक है। यह जागर भी तीन प्रकार का होता है।

(क) चरित्ररूप—कृष्ण, राधा एवं रुक्मिणी आदि के चरित्र का वर्णन है।

(ख) निरंकार—भैरों, नृसिंह एव अछरियों का वर्णन है।

(ग) पंडौं—पाँचों पांडवों का इनमें वर्णन है।

जिस प्रकार हिन्दी का भक्तिकाल निर्गुणधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के महात्मा कबीर की निराकार भक्ति-भावना है, ठीक उसी प्रकार गढ़वाली भाषा के जागर के निरकारी गीतों में सृष्टि की उत्पत्ति का निराकार वर्णन पौराणिक ढग पर किया गया है।

३. *पँवाड़ा* ऐतिहासिक वीर गाथाएँ)

यह पँवाड़ा तीन प्रकार का होता है—ऐतिहासिक पँवाड़ा, काल्पनिक पँवाड़ा और वीरांगनाओं का पँवाड़ा।

पँवाड़ा भी गढ़वाल में अधिक प्रसिद्ध हैं। उनमें वीर-गाथा का क्रमबद्ध ऐतिहासिक वर्णन होता है। पँवाड़ा—मौखिक खंडकाव्य और महाकाव्य वर्णन की क्षमता रखते हैं। इन पँवाड़ों में वीर-पूजा की भव्य चेतना है। हिन्दी के वीर-गाथा-काल की भाँति राजकुमारियों के हरण के कारण लड़ाइयाँ भी होती थी। अतः, उनमें वीर रस के साथ-ही-साथ शृंगार और वात्सल्य के रूप भी मिलते है।

जीतू बगड्वाल की गाथा भी गढ़वाली भाषा में सर्वप्रिय और प्रसिद्ध गाथागीत है। जीतू बगड्वाल अपने युग का वीर एव अलगोजा (बांसुरी) बजानेवाला रणबाँकुरा था। एक बार उसकी माता ने धान के बासमती खेतों की रोपनी के मुहूर्त के समय उसे 'भुली' (छोटी बहिन) को बुलाने के लिए भेजा। उसे माता ने सभी प्रकार के उपदेश दिये एवं खैरधार (इस नाम का पहाड़) की चोटी पर अलगोजा बजाने एवं अपनी साली के यहाँ जाने की मनाही कर दी। किन्तु, साथ में माता से छिपाकर वह अपनी बाँसुरी, लेता गया।

खैरधार पहाड़ की चोटी के ऊपर पहुँचकर वह अपनी थकावट दूर करने लगा। उस ऊँचे पर्वत-शिखर का शीतल एवं सुरभित पवन उसके मन को उकसाने लगा और वह मधुर ध्वनि से अपना अलगोजा बजाने लगा। उसकी वंशी की ध्वनि सुनकर तत्काल उस

शिखर की रहनेवाली सात अछरियों ने उसे घेर लिया और विवाह करने के लिए उसे बाध्य किया। ऐसी धारणा है कि कुमारी अवस्था में जो स्त्रियाँ मर जाती हैं, वे ही अछरियाँ बनती हैं। जीतू बगड्वाल ने, अपनी बहिन 'शोभनी' के यहाँ से लौटकर आने के पश्चात्, उनकी बात मान लेने की स्वीकृति दे दी। जीतू बगड्वाल की प्रतिज्ञा को वे सभी अछरियाँ मान गई।

जीतू अपनी साली से मिलकर एवं अपनी बहन 'भुली शोभनी' को लेकर रोपनी मुहूर्त्त के दिन घर आ गया। उसने अपने कपड़े किसी दूसरे को पहना दिये। खेत में धानों को रोपने से पूर्व जब वह हल लगाने आया, तब वे अछरियाँ हल और बैलों के सहित उसको पानी में हर ले गई।

जीतू द शोभनू होला गरीब का बेटा।
माता त सुमेरा छई दादी फलूंली जौसू॥
दादा जी कुंवर छया भुली शोभनी छई।
जाति को पँवार छयो जीतू अकलि गँवार॥
बगुड़ी जैक भौंजी होई गैन बगडवाल॥

जीतू बगड्वाल और शोभनू गरीब के बेटे होंगे। उनकी माता सुमेरा थी और दादी उनकी फलूँली जौदू थी। उनके दादा जी कुँवर थे और भुली (बहन) शोभनी थी। वह जीतू बगड्वाल जाति का पँवार था और अक्ल से गवार-सा था। बगूड़ी नाम के स्थान पर जाकर वे बगड्वाल हो गये।

४. *झुमैलो* (दुःख और स्नेह के गीत)

ये गीत सामूहिक रूप से चैत्र मास में दो समूह में बैठकर गाये जाते हैं। इसमें दुःखी और प्रेमपूर्ण हृदय के व्यक्ति, झुमैलो में अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त कर, दुःख और सुख की अनुभूति को न्यून एवं अधिक समझने लगते हैं। ये गीत गढ़वाली भाषा में दुःख एवं प्रेम के प्रतीक हैं। जब वसन्त ऋतु में चारों ओर मादकता और आनन्द छा जाता है, तब आन्तरिक व्यथा से व्यथित नवयुवतियाँ झुमैलो गाकर अपने दुःखों को भुलाने का प्रयत्न करती हैं।

आई गेन ऋतु बौडी दाईं जनो फेरो झुमैलो।
ऊबा देसी ऊबा जाला, ऊंदा देसी उदा झुमैलो॥
लम्बी-लम्बी पुंगड्यो मां र अ—रअ शब्द होलो झुमैलो।
गेहूँ की जौ की सारी पिंग्ली होई गैने झुमैलो॥

समय का क्रम परिवर्त्तनशील है। अतः, इस गीत में भी आन्तरिक दुःख से दुःखी नारियाँ अस्पष्ट ध्वनि में अपने भावों को व्यक्त कर रही हैं।

ये ऋतुएँ वापस आ गई हैं। अनाज के आँगन में बैलों के घूमने के समान, विदेशों में जानेवाले ऊपर आयेंगे और नीचे को जानेवाले (विदेशों में जानेवाले लोग) नीचे

जायेंगे; लम्बे-लम्बे खेतों में हल लगानेवाले लोग बैलों को र-श्र्, र-श्र् शब्द से सम्बोधित करके पुकारेंगे। गेहूँ और जौ पीले हो गये हैं, घूम-घूमकर झुमैलो।

यह झुमैलो गीत और दो प्रकार का होता है--छोपती और लावण।

५. *थड्यागीत*

यह भी दो प्रकार का होता है--वासन्तीगीत और होगीगीत।

दसरत को लछीमन बाल जती।
चौदह बरस तपोवन रहियो, ताप नीं लाग्यो एक रती।
चौदह बरस हिमालय रहियो, जाड़ो नि लाग्यो एक रती।।
चौदह बरस सीता संग रहियो, पाप नि लाग्यो एक रती।।

दशरथ का लक्ष्मण बाल यति है। जो चौदह वर्ष तपोवन-भूमि में रहा, फिर भी जिसे रत्ती भर दुःख नहीं हुआ। चौदह वर्ष हिमालय में रहा, किन्तु उसे (एक रत्ती) तनिक भी ठंड नहीं लगी। चौदह वर्ष वह सीता जैसी नारी के साथ रहा; किन्तु उसे तनिक भी पाप नहीं लगा।

६. *बाजूबंद* (गीतात्मक सवाद)

प्रेम से भरे हुए एवं मनोहारी भाव बाजूबंद में मिलते है। उस प्रकार के समकक्ष के गीत किसी भी दूसरे साहित्य में उपलब्ध नहीं होते।

७. खुदेड (विरह के गीत)

खुदेड़ (स्मृति) गीतो की करुणा गढ़वाल की बहू-बेटियो के हृदय की सच्ची कथा है। स्त्रियों की सम्पूर्ण पीडा इन्हीं खुदेड़ गीतो मे एकत्र हुई है।

अपने माता-पिता के स्नेह में तल्लीन कोई नवयुवती दूर जंगलो में उसके मैत (मायके) के गाँवो से आई हुई परिचित घसियारिनों से रैबार (सन्देशा) दे रही है।

८ *चौफला* (मिलन के गीत)

इन गीतो में धर्म, अर्थ काम एवं मोक्षपरक गीत प्रधान रूप से होते हैं। इन गीतो को समूह में ताली बजाते हुए उल्लसित मन से लोग गाते हैं। प्रसन्नता से मन-मयूर वास्तविक प्रकृति के वातावरण में स्वतः प्रफुल्ल हो उठता है।

९. *कुलाचार* (विरुदावली)

गढ़वाल मे औजी (दरजी) कहे जानेवाले दास लोग अपने ठाकुरों का कुलाचार गीतों में वर्णन करते है। जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य के वीरगाथा में चारण लोग गुणगान करते थे, ठीक उसी प्रकार इन कुलाचारों में औजी लोग अपने ठाकुरो के वंश की प्रशस्ति प्राचीन काल से अबतक गाते आ रहे हैं।

१० *चौमासा* (वर्षाऋतु के गीत)

हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में वर्षा काल में घनघोर वर्षा होती रहती है। उस काल में चारों ओर कुहरा छाया रहता है और पानी के छोटे-छोटे छुए (स्रोत) स्वतः ही धरती से

फूट जाते है। वर्षा की रिमझिम से प्रत्येक का मन-मयूर प्रसन्न होकर गीत गा उठता है, तरह-तरह के फल-फूल मन को आकृष्ट करने लगते हैं।

रुम झुम बरसा छुम-छुम छोया,
क्या च कुयेडी लौंण की।...

रिमझिम पानी बरस रहा है एवं छुम छुम शब्द करता हुआ पृथ्वी से जल का स्रोत स्वतः ही निकल रहा है। बाहर चारों तरफ श्रावण मास का कुहरा छाया हुआ है। वर्षा से पृथ्वी में तरह-तरह के फल-फूल दिखाई दे रहे हैं, जिनको देखकर मेरा मन-मयूर नाच उठता है और अपने प्रियजन की स्मृति में मेरा मन क्षुब्ध होकर रो रहा है।

११. बारामासा

बारामासा में बारहों महीनों के गीत पृथक्-पृथक् उन महीनों की स्थितियों के अनुसार अनूठे ढग से प्रकृति के चित्रण के साथ गाया जाता है।

१२. पटखाई मे छुड़ा

प्रायः ये सभी गीत ऐसे उपदेशात्मक शैली मे बनाये गये हैं, जिनसे मनुष्य अपने मानवीय गुणों को पहचानकर बुरे कृत्यों की ओर न लगे। लोकनीति, राजनीति के अनेक सुन्दर गीतों का चयन इस 'पटखाई मे छुडा' में है।

गढ़वाली भाषा का प्रकाशित साहित्य

गढ़वाली भाषा के साहित्य की प्राचीनता प्रारम्भ में बतलाई गई है, किन्तु सन् १८५० ई० के लगभग यह प्रकाशित रूप में जनता के सम्मुख आया।

श्रीविश्वम्भरदत्त चन्दोला ने सन् १८६० ई० गढ़वाली साहित्य का प्रकाशन-वर्ष माना है। श्रीश्यामचन्द नेगी ने महाराजा टिहरी राज्य-नरेश सुदर्शन शाह (सन् १८१५ से १८५६ ई०) द्वारा लिखी हुई 'गढ़वाली में गोरखवाणी' के प्रकाशन से माना है।

गढ़वाली भाषा और साहित्य के प्रथम युग के कवियों में सर्वश्री ईश्वरीदत्त दौर्गा-दत्ति घड़ोला (भूतपूर्व सुपरिण्टेण्डेण्ट, गवर्नमेंट संस्कृत एसोसियेशन, बिहार), श्रीहर्षपुरी, श्रीलीलानन्द कोटनाला आदि हैं।

सन् १८३० ई० के लगभग सिरामपुर के ईसाई धर्म-प्रचारकों ने गढ़वाली भाषा में 'न्यू टेस्टामेंट' का अनुवाद किया। यद्यपि गढवाली में बाइबिल का अनुवाद ईसाई लोगों ने अपनी स्वार्थ-भावना से किया था, किन्तु गढ़वाली लेखकों को इससे अत्यधिक लाभ हुआ और तभी से लिखित रूप में साहित्य जनता के सम्मुख आने लगा। इन्होंने गढ़-वाली भाषा के प्रसार और प्रचार मे योग भी दिया है।

सन् १९०० ई० में श्रीगोविन्दप्रसाद घिल्डियालजी ने संस्कृत के 'हितोपदेश' का गढ़वाली भाषा में अनुवाद किया। सन् १९०५ ई० में देहरादून से श्रीविश्वम्भर दत्त चन्दोला जी द्वारा 'गढ़वाली' साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन से जनता-जनार्दन का ध्यान

गढ़वाली भाषा और साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। इसके पश्चात् मौखिक रूप में अथाह पड़ा हुआ साहित्य 'गढ़वाली' पत्र में छपने लगा।

गढ़वाली साहित्य को हम ५ भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. प्राचीन काल

इस काल में समस्त साहित्य मौखिक रूप में जिसका हम वर्णन कर चुके हैं। इस युग में समस्त साहित्य परम्परा से कण्ठों में ही था।

२. अर्वाचीन काल

इस काल में श्रीईश्वरीदत्त घौगादत्ति द्वारा लिखित '*चेतावनी*' श्रीहर्षपुरी द्वारा '*बुरो संग*' एवं श्रीलीलानन्द कोटनाला द्वारा लिखित '*विरह*' आदि कविताएँ प्रसिद्ध हैं।

श्रीलीलानन्दजी कोटनाला ने सन् १६१८ में 'गढवाली छन्दमाला' प्रकाशित की। उस छन्दमाला में गढ़वाली में छन्द-रचना की रीति बताई गई है। उन्होंने और भी कई पुस्तकें लिखीं। गढगीत, लीलाप्रेमसागर, गढ़वाली प्रस्तावावली आदि पुस्तकें लिखी हैं। पंडित सनातनानन्द सकलानीजी ने अपने एक लेख में लिखा था कि श्रीलीलानन्द कोटनाला भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के साहित्य-सहयोगी और 'कविवचनसुधा आदि पत्रों के आदि गढ़वाली-लेखक थे।

३. गढ़वाली पत्र का युग

श्रीविश्वम्भरदत्त चन्दोला इस युग के निर्माता हैं। देहरादून से श्रीचन्दोलाजी ने अपने सभी कार्यों को छोड़कर बड़े त्याग एवं तत्परता से गढ़वाली पत्र का सम्पादन किया और गढ़वाली भाषा और साहित्य की बड़ी सेवा की।

वस्तुतः, जो कार्य हिन्दी-गद्य के लिए आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा किया, ठीक उसी प्रकार वही कार्य श्रीचन्दोला ने 'गढवाली' पत्र द्वारा गढवाली भाषा और साहित्य के लिए किया है। वे अपने युग के लेखकों को प्रोत्साहित कर और उनकी रचनाओं को सुधार-सुधारकर अपने पत्र में प्रकाशित करते रहे।

सन् १६०५ ई० में 'गढवाली' पत्र के प्रकाशन के साथ-ही-साथ गढ़वाली प्रदेश के भावों और विचारों में एक प्रकार की क्रान्ति मच गई।

इस युग में 'गढवाली' पत्र के प्रथम अंक में श्रीसत्यशरण रतूड़ी की 'उठा गढ़वालियों' शीर्षक युग परिवर्त्तनकारी कविता छपी। श्री 'रतूड़ी' जी स्वयं अँगरेजी, संस्कृत तथा हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् तथा गम्भीर दार्शनिक विचारक थे। हिन्दी की 'सरस्वती' पत्रिका के प्रथम काल में इनकी कविताएँ उसमें भी छपी थीं। श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने कविता-कौमुदी में श्रीरतूड़ीजी की 'शान्तिमयी शय्या' कविता को स्थान दिया।

श्रीचन्द्रमोहनजी रतूड़ी भी इस युग के गढ़वाली भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनकी कई रचनाएँ हैं। 'देववरण को वर्णन', 'विरह वसन्तविलाप', 'गढ़वाल का सच्चा कवियों से

प्रार्थना', 'मनुष्य जीवन की नीति', 'दरवानसिंहकु विक्टोरिया क्रॉस', 'टिहरी से विदा' आदि सुन्दर कविताएँ हैं।

श्रीतारादत्तजी गैरोला वकील श्रीचन्द्रमोहनजी को अँगरेजी के कवि कीट्स और शैली के समकक्ष मानते थे।

श्रीआत्मारामजी गैरोला इस युग के गढ़वाली कविता के अच्छे कवि थे। उनकी कविता पद-लालित्य, मधुरता, व्यंग्य तथा देश-प्रेम से सुसज्जित है। आपकी शैली सरल है एवं भाषा गढ़वालीपन से ओतप्रोत।

आपकी रचनाएँ—स्वार्थाष्टक, दरिद्राष्टक, तुलसी, एजेन्सी महिमा-वर्णन आदि हैं। आपके व्यंग्य बहुत ही सुन्दर होते थे।

उस युग में और अनेक कवियों ने सराहनीय कार्य किया। श्रीदेवेन्द्रदत्त रतूड़ी, श्रीगिरिजादत्त नैथाणी, श्रीसुरदत्त सकलानी एवं श्री दयानन्द बहुगुणा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी समय श्रीबलदेवप्रसाद शर्मा 'दीन' ने 'रामी' और 'वाटा गोडाई' नामक सुन्दर कृतियाँ रखीं। वाटा गोडाई गीत गढ़वाल के स्त्री-पुरुष प्रत्येक की जिह्वा पर सर्वप्रिय हुआ। इस गीत में गढ़वाली नारी का सुन्दर आदर्श उपस्थित किया गया है।

इसी युग में रायबहादुर श्रीतारादत्तजी गैरोला वकील का अपनी भावपूर्ण कविताओं के कारण विशेष और गौरवपूर्ण स्थान है। किसी नवयुवती के हृदय में उठी अपने मैत (मायके) के घरों और गाँव को देखने की अभिलाषा का कितने सुन्दर एवं मार्मिक शब्दों में वर्णन किया गया है! जिस प्रकार महाकवि कालिदास ने मेघदूत गीतिकाव्य में यक्ष के द्वारा जड मेघ से प्रार्थना करके अपनी प्रियतमा को संदेश भेजने के लिए उसे तैयार किया, ठीक उसी प्रकार श्रीगैरोलाजी ने अपनी कविता में जड पर्वतों और चीड़ के पेड़ों से अपने 'मैत की खुद में' (मायके की याद में) व्यथित युवती विनीत शब्दों में प्रार्थना करती है कि हे ऊँचे-ऊँचे पर्वतो! कुछ क्षणों के लिए आप नीचे हो जाते, तो मैं अपने पिता के घर को देख सकती। यहाँ अपने भले के साथ पर्वत एवं पेड़ों को नष्ट न करके 'जियो और जीने दो' की नीति को अपनाया गया है।

श्रीमहन्त योगेन्द्रपुरीजी शास्त्री का 'फूलकण्डी' नाम से एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ था। आपने सुप्त जनता को जगाने के लिए संस्कृत के वार्णिक छन्दों में अनेक कविताएँ लिखीं। आपने अनेक कविताएँ समाज की बुराइयों को सुधारने के लिए लिखी हैं।

श्रीचक्रधर बहुगुणाजी की कविताएँ भी 'मोछंग' नाम से इसी युग में ही प्रसिद्ध हुईं। श्रीबहुगुणा की मोछंग कविता को विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने बहुत पसन्द किया। इस कविता का गुजराती, मराठी और तमिल भाषा में अनुवाद हुआ है। अतः, इसकी लोकप्रियता का अच्छा प्रमाण मिलता है।

श्रीतोताकृष्ण गैरोला की 'प्रेमी पथिक' और 'तात घनानन्द', श्रीशशिशेखरानन्द सकलानी एवं श्रीमती विन्ध्यवासिनी सकलानी की 'पुष्पांजलि' नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

पुष्पांजलि में नीति एवं उपदेशात्मक कविताएँ अधिक हैं। श्रीगैरोलाजी का तो 'प्रेमी पथिक' काव्य अत्यधिक सुन्दर एवं मार्मिक भावों से भरा हुआ है।

इस युग में जहाँ पद्य में काम हुआ, वहाँ गद्य-साहित्य में भी श्रीशालिग्रामजी वैष्णव ने गढ़वाली लोकोक्तियों का संग्रह आरम्भ किया और आठ वर्षों में यह कार्य स्वर्गीय डॉ० पीताम्बर नारायण बड़थ्वालजी के सहयोग से प्रकाश में आया। गढ़वाली परवाणा (कहावतें) नाम का यह संग्रह गढ़वाली भाषा की अमूल्य निधि है।

सन् १६०८ ई० में श्रीगिरिजादत्त नैथाणी ने 'मांगलसंग्रह' पुस्तक का प्रकाशन किया। श्रीभवानीदत्त थपलियाल ने दो नाटक 'जय-विजय' और 'प्रह्लाद' भी प्रकाशित किये। गढ़वाली भाषा में इससे पूर्व के दो रूपक उपलब्ध हैं—'धूल नगेलो' और 'गरुडासन'।

श्रीभोलादत्तजी देवरानी की रचनाएँ भी इसी युग में अपना विशेष स्थान रखती हैं। 'बारवा घसेरी' और 'नल दयमन्ती' के पश्चात् आपने गढ़वाल के इतिहास-प्रसिद्ध उस माधोसिंह भण्डारी पुरुषार्थी का चरित्र कविता में लिखा, जिसने देश के निर्माण में 'मलेथा' जैसी सूखी भूमि में 'मलेथा की कूल' अथाह परिश्रम से लाकर अपना नाम अमर किया। यहाँतक कि दूर से नहर निकालने पर जब पानी न आया, तब अपने लड़के की बलि देकर अपनी भविष्य की पीढ़ियों के लिए कूल (नहर) का निर्माण कर दिया। इसीलिए, माधोसिंह भण्डारी के लिए यह पद प्रसिद्ध है—

एक सिंह रैंदो बण, एक सींग गाय का।
एक सिंह माधो सिंह, और सिंह काहे का॥

एक सिंह जंगल में रहता है और एक सींग गाय का होता है। एक सिंह (शेर) माधोसिंह भण्डारी है और सिंह कौन है?

श्रीदेवरानीजी ने 'मलेथा की कूल' कविता से इतिहास प्रसिद्ध माधोसिंह का चरित्र प्रस्तुत कर आज के नवयुवक-नवयुतियों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ा राष्ट्र के विकास में योग देने के लिए प्रोत्साहित किया।

गढ़वाल में समाज के लिए त्याग करनेवाला माधोसिंह का गीत 'मलेथा की कूल' स्त्री, पुरुष एवं बच्चे बच्चे के मुख से आज भी आदर से लिया जाता है। माधोसिंह ने एक मील लम्बे पहाड़ को साधारण हथियारों से काटकर अन्दर-ही अन्दर सुरंग के द्वारा गाँव में नहर निकाल कर दिखलाया था।

४. सामाजिक चेतना-युग

इस युग में वस्तुतः समाज में फैली हुई कुरीतियों एवं अज्ञान-अंधकार में सुप्त जनता को उठाने के लिए चेष्टाएं की गईं। सामाजिक चेतना का जाग्रत् करना ही इस युग का मुख्य कार्य था। श्रीभजन सिंह 'सिंह' के 'सिंहनाद' और 'वीरवधू' इस युग के अत्यधिक सुन्दर और प्रभावोत्पादक कविता-संग्रह हैं। इस सामाजिक चेतना-युग में समाज में

फैले हुए बुरे विचारों, बूढ़े का विवाह, शराबखोरी, मुकदमेबाजी आदि कुरीतियों को दूर करना और जनता-जनार्दन को ठीक-ठीक मार्ग-प्रदर्शन करना इस युग की विशेषता रही है।

इसी युग में श्रीविशालमणि शर्मा, श्रीललिताप्रसाद 'ललाम' एवं श्रीसत्यप्रसाद रतूड़ी आदि अनेक कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा सुधार का कार्य किया।

सन् १९४२ ई० में पंजाब-प्रान्त लाहौर में गढ़वाली साहित्य-परिषद् की ओर से एक विशाल 'गढ़वाली शब्द-भण्डार' प्रकाशन की योजना बनाई गई थी। इस समिति में श्रीश्रीवरानन्द जी घिल्डियाल, श्रीशिवप्रसाद घिल्डियाल एवं श्रीबलदेवप्रसाद नौटियाल प्रमुख व्यक्ति थे। इस परिषद् ने 'गढ़वाली शब्द-भण्डार' का कार्य प्रारम्भ कर दिया था और एक-दो अंक इस शब्द-भण्डार के बड़े उत्साह एवं अन्वेषणपूर्ण ढंग पर विद्वान् लेखकों ने प्रकाशित भी किये, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् ही भारत-विभाजन की समस्या से, परिषद् एवं उसके सदस्यों को अत्यधिक कठिनाई उठानी पड़ी। यदि कहीं यह शब्द-भण्डार प्रकाशित हो गया होता, तो ध्वनि-विज्ञान के आधार पर गढ़वाली भाषा से और भाषाओं की समानता का स्पष्टीकरण अच्छी प्रकार अवगत होता।

इस कोष की भूमिका में लिखा हुआ था कि लाहौर के ओरियंटल कॉलेज के प्रो० डॉ० बनारसीदासजी जैन ने सुना कि प्रसिद्ध भाषा विज्ञान के विद्वान् प्रो० टरनर महोदय ने अपने साले को 'चीफ्स' कॉलेज लाहौर को लिखा कि क्या संसार की किसी जीवित भाषा में 'काखड़' शब्द मिलता है और यदि मिलता है, तो किस अर्थ में मिलता है। चीफ्स कॉलेज से जानकारी के लिए प्रिन्सिपल, ए० सी० वुल्नर ओरियण्टल कॉलेज के पास पत्र आया। डॉ० जैन के पास वह पत्र आया और उन्होंने अपने क्लास में पूछा। उसमें डाक्टर साहब के कई प्रतिभासम्पन्न गढ़वाली छात्र थे। उन्होंने कहा कि गढ़वाली भाषा में 'काखड़' मृग विशेष के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार, भाषा-विज्ञान के विद्वान् की समस्या गढ़वाल में प्रयुक्त होनेवाले शब्द से पूर्ण हो गई।

५ पाथरी युग

इस युग में समाचार-पत्रों द्वारा गढ़वाली भाषा के प्रसार एवं प्रचार के लिए प्राणपण से प्रयत्न हुआ। युगवाणी, रांको, फ्यौंली आदि कई समाचारपत्र प्रकाशित हुए। इनमें नाटक, कविता, निबन्ध एवं अन्वेषण के कार्यों पर बल दिया जाने लगा।

प्रोफेसर श्रीभगवतीप्रसादजी पांथरी ने गढ़वाली गद्य एवं पद्य में अपनी लेखनी उठाई और जो कुछ लिखा, वह सत्य और तथ्य को लेकर लिखा।

आपकी प्रकाशित पुस्तकें निम्नलिखित हैं—

१. बाँसुरी, २. अधःपतन, ३. भूतों की खोह, ४. पाँच फूल आदि। श्रीपाथरीजी को इसलिए अधिक श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने नव जागृति, नवप्रेरणा, नव उत्साह एवं राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित होकर गढ़वाली भाषा और साहित्य को उत्तरोत्तर स्वयं समृद्ध किया एवं नई पीढ़ी के गढ़वाली साहित्य-लेखकों को प्रोत्साहन देकर लिखने की ओर लगाया।

इस युग में गढ़वाली भाषा और साहित्य को उन्नत करनेवाले कर्मठ नवयुवक आचार्य दामोदरप्रसाद थपलियाल, आचार्य श्रीगोपेश्वर कोठियाल, श्रीश्यामचन्द नेगी, श्रीजीत सिंह, श्रीहरिदत्त भट्ट शैलेश, श्रीपुरुषोत्तम डोभाल, श्रीगोविन्द चातक आदि लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं। देहरादून में इन लोगों ने 'गढ़वाली जन-साहित्य परिषद्' की स्थापना करके गढ़वाली भाषा के साहित्य के विकास के लिए विशेष आयोजन कर गद्य पद्य में अनेक खोजपूर्ण निबन्धों का संग्रह कराया और लुप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए पूर्ण परिश्रम किया।

श्रीहरिदत्तजी भट्ट भी गढ़वाली शब्द-सौष्ठव पर सुन्दर अन्वेषणपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आपके शोधपूर्ण कार्य से गढ़वाली भाषा और साहित्य की विशेषताएँ जानने में अधिक सहायता मिल सकेगी।

गढ़वाली भाषा का गद्य और कथा साहित्य

गढ़वाल में अँगरेजों के आने से पूर्व गढ़वाली भाषा ही राज्यभाषा थी। राज्य के समस्त कार्य एवं राजा और प्रजा में बातचीत गढ़वाली भाषा में ही होती थी। साहित्यिक भाषा संस्कृत ही थी, जैसा उस युग के उपलब्ध ताम्रपत्रों से अवगत होता है। गढ़वाली भाषा में शिक्षाप्रद, वीररस-पूर्ण, रुलानेवाले कारुणिक एवं हँसानेवाले सरस गीतों और कहानियों का विशाल भाण्डार है।

श्रीचक्रधर बहुगुणाजी ने अपने लेख—'गढ़वाली भाषा की रूपरेखा' में लिखा है कि गढ़वाल ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ के वातावरण में भारत की प्राचीन सभ्यता और आदर्शों की छाप आज भी वैसी-की-वैसी पड़ी है। प्राचीन समय में गढ़वाल का जिन लोगों के साथ मेल-जोल था, उनकी स्मृति गढ़वाली भाषा में मिलती है। प्राचीन ताम्रपत्रों में गढ़वाली गद्य देखने में आता है। इसके साथ ही बाइबिल का गढ़वाली गद्य में अनुवाद हुआ।

बाल्यकाल में हम भी गढ़वाली लोककथाओं को सुनते थे। पशु पक्षियों की ऐसी कहानियाँ सुनने को मिलती थी, जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता था। गढ़वाल के लोगों के धर्मविश्वास, दन्तकथाएँ, रीति-रिवाज, अंधविश्वास एवं परम्पराएँ हैं, जिनका जन-साहित्य के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गढ़वाली दन्तकथाओं से अवगत होता है कि बहुत पहले पशु बोलते थे। वे लोगों का उनके शुभ-अशुभ कृत्यों के फल को बताकर एवं उनकी मृत्यु-तिथि भी बता देते थे। इसके फलस्वरूप कई लोगों को संसार से विरक्तता हो जाती थी और वे अपनी सम्पत्ति को समाप्त कर देते थे। अतः, तब से पशुओं को शाप मिला कि तुम गूँगे हो जाओ और तभी से पशु बोल नहीं सकते हैं।

पशुओं के बछड़ों के समान मनुष्य के बच्चे भी उत्पन्न होते ही चलने-फिरने लगते थे, किन्तु एक बार मनुष्य-स्त्री ने अपने प्रसव के समय अपनी तो गाय आदि से सेवा

शुश्रूषा करा ली, किन्तु जब पशु-स्त्री के प्रसव का समय आया, तब उसकी अवहेलना कर दी। तभी से पशु-स्त्री के शाप से मनुष्य के बच्चे १०-११ मास के पूर्व चल-फिर नहीं सकते।

कुछ स्थानों में यहाँतक सुना जाता है कि वहाँ के ग्रामदेवता जैसे—भैरव, नागरजा, नृसिंह आदि ग्राम की रक्षा के हेतु बराबर ग्रामवालों को सजग रखते थे। जब कभी कोई भयंकर उत्पात होनेवाला हो या कोई शत्रु और चोर ग्राम के खेत आदि किसी भी चीज को हानि पहुँचाता, तब वे तत्काल आवाज देकर ग्रामवालों की रक्षा करते थे।

भूत एवं उसी प्रकार की अन्य जातियों मे कई असम्भव कार्य कराने की कहानियाँ गढ़वाली भाषा और साहित्य में अत्यधिक बिखरी पड़ी हैं। इनमें से भी वास्तविक सामग्री को एकत्र करने की आवश्यकता है।

इन लोककथाओं को एकत्र करने के क्षेत्र में रायबहादुर श्रीतारादत्त गैरोलाजी वकील ने एवं श्री रेवरेण्ड ई० एम० ओकले ने अँगरेजी में 'फोकलोर ऑफ् गढ़वाल' पुस्तक लिखी। उस पुस्तक का बाद में श्रीसरस्वतीसरन 'कैफ' ने हिन्दी में अनुवाद किया। इसके हिन्दी-अनुवाद से गढ़वाली कथा-साहित्य से हिन्दी-प्रेमी भी परिचित होकर लाभान्वित होंगे। इन लोक-कथाओं में—

१. राजा मानसाह, २. काफू चौहान, ३. कला भण्डारी, ४ सुरजू-कुँवर ५. काली हरपाल, ६. बागा रावत, ७. पाँचू ठग आदि अनेक कथाएँ लिखकर गढ़वाल की प्राचीन वीर-गाथाओं को ऐतिहासिक महत्त्व देकर प्राचीन गायकों द्वारा संचित निधि को लिपिबद्ध कर जनता के समक्ष रखा गया।

गढ़वाली भाषा और साहित्य में यह जन-साहित्य १० भागों में विभक्त है—

१. देवी-देवताओं की कथाएँ, २. पशु-पक्षियों की कथाएँ, ३. भूत-प्रेतों की कथाएँ, ४. परियों-अछरियों की कथाएँ, ५. वीर बहादुरों की कथाएँ ६. हास्य रस की कथाएँ, ७. राजा रानियों की कथाएँ, ८. जीव-जन्तुओं की कथाएँ, ९. उपदेशात्मक कथाएँ, १०. तन्त्र-मन्त्र एवं जादू-टोने की कथाएँ।

इस तरह, सभी प्रकार का कथा-साहित्य गढ़वाली भाषा में बिखरा पड़ा है।

तंत्र-मन्त्र पर गारुडिक लोगों के पास लिपिबद्ध न किया हुआ अत्यधिक साहित्य है। इस साहित्य में कुछ तात्कालिक कार्य करने की शक्ति है। वे जिस किसी के लिए जो चाहते हैं, करके दिखा देते हैं। इसे 'सावर' विद्या भी कहते हैं। इसका अधिक साहित्य अब भी डोम (हरिजन) कहे जानेवाले लोगों के पास है। परम्परा से इसी प्रकार यह साहित्य चला आ रहा है।

गढ़वाली भाषा की और भाषाओं से समता

श्रीश्रीधरानन्दजी घिल्डियाल ने अपने निबन्ध 'गढ़वाली भाषा और उसका शब्द-कोष' में गढ़वाली भाषा और वैदिक संस्कृत के शब्दों की समानता बतलाते हुए 'लिखा कि इस गढ़वाली भाषा का अपना महत्त्व है। यह भाषा सम्पन्न है एवं इसका शब्द-भाण्डार बहुत बड़ा है। इसका विकास वैदिक संस्कृत और संस्कृत भाषा की अदला-बदली

से हुआ है। गढ़वाली भाषा का सम्बन्ध सीधा वैदिक भाषा एवं संस्कृत भाषा से है। जैसे—स्यो (वह आदमी), स्या (वह स्त्री)। स्य शब्द वैदिक संस्कृत में तत् शब्द से भिन्न है। तत् शब्द का जन्म इसी 'स्या' शब्द से हुआ है। किम् शब्द का केन तृतीया विभक्ति का एकवचन है : गढ़वाली भाषा में 'तेरी मति केन बिगड़े' (तेरी बुद्धि किनसे बिगड़ी)। इसी प्रकार कति शब्द संख्यावाचक है। इसी अर्थ और इसी रूप में यहाँतक कि पुंलिंग-स्त्रीलिंग तक में ये शब्द संस्कृत और गढ़वाली में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

(सं०) कति जनाः सन्ति। (ग०) कति आदमी छन।

(सं०) कति बालिकाः सन्ति। (ग०) कति लड़की छन।

दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

गढ़वाली भाषा के शब्दों का संस्कृत भाषा से निकटतम सम्बन्ध इन शब्दों के द्वारा परिलक्षित होता है—

संस्कृत शब्द	गढ़वाली शब्द
१. अनुसार	१. अंद्वार
२. अन्यत्र	२. अएव
३. अधः	३. उन्दो
४. एकदा	४. एकदाँ
५. पलालि	५. पराल
६. नवनीत	६. नौण
७. ईषत्	७ इच्छी
८. स्यात्	८. सैत
९. सीमा	९. स्यूं

गढ़वाली भाषा में कुछ शब्द इतने विलक्षण हैं कि उनके समानार्थक शब्द भारत की आजकल की भाषाओं में क्या, यहाँतक कि संस्कृत-भाषा में भी नहीं मिलते। इस प्रकार के शब्दों से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं से पृथक् भी गढ़वाली भाषा का स्वतन्त्र और अपना विकास है। अपने प्रियजनों के बिछुड़ने पर उसके बाद जो याद आती है, उसे 'खुद' कहते हैं; किन्तु दूसरी भाषाओं में इस शब्द का समानार्थक शब्द ही नहीं है। अपितु, इस भाव को प्रकट करने के लिए अधिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, फिर भी वह भाव प्रकट नहीं होता। दीदी (बड़ी बहिन), भुली (छोटी बहन) और भुला (छोटा भाई) के लिए प्रयोग होता है। दूसरी भाषा में इनकी कमी है। संस्कृत के अनेक मुहावरे गढ़वाली से मिलते हैं। जैसे—'*गलगएड लग्यूं छ*' (*व्यर्थ का भार लगा है*), '*फफराए लग्यूं छ*' (तेजी से इधर-उधर जा रहा है)। यह संस्कृत फर्फराय शब्द से मिलता है। 'नीर को नीर और छीर-कु छीर' (सही सही न्याय) यह संस्कृत के 'नीरक्षीरन्याय' से मिलता है। आनेवाले कल और व्यतीत हुए कल के

लिए हिन्दी भाषा के पास भी शब्द नहीं, किन्तु गढ़वाली भाषा में ब्याले (व्यतीत कल) और भोल (आनेवाला कल) शब्द हैं।

गढ़वाली में 'छ' जो क्रिया है, उसका मूल संस्कृत में है। जैसा कि पाणिनि के के इस सूत्र में है—पर्वताच्छः।

गढ़वाली और मराठी

इन दोनों भाषाओं में कितने ही शब्द एक-जैसे हैं। उदाहरण के रूप में देखिए—

अगाड़ी	(गढ़वाली)	गघाड़ी	(मराठी)
देनारी	,,	देणारी	,,
जथका	,,	जितकाँ	,,
लमडइ	,,	लमडनी	,,

दोनों के मुहावरों में भी बहुत-कुछ समता है—कुड़ो फोड़ने (गढ़वाली), घर फोड़नो (मराठी), गाली गडणू (गढ़वाली), गाल गडणू (मराठी)।

गढ़वाली और राजस्थानी

इन दोनों भाषाओं का परस्पर शब्द-साम्य परिलक्षित होता है। इतरा-इतरी, गत, छकी, कदे, छोरा, ठट्ट दोनों में समान हैं। स्त्रियों को बुलाने के लिए दोनों में 'हेली' कहा जाता है। 'जी' की जगह पर राजस्थानी की भाँति गढवाली भाषा में 'ज्यू' बोला जाता था। जैसे—पिछले तीन शिलालेखों में इसका प्रयोग दिखाया गया है।

राजस्थानी और गढ़वाली को यदि सूक्ष्मतया देखा जाय, तो बहुत शब्द और अर्थ समान रूप में हैं। न को ण दोनों में समान बोलते हैं।

आछरी	(गढ़वाली)	अच्छरी	(राजस्थानी)
औखणो	,,	उखाणो	,,
डागन (डाकण)	,,	डाकण	,,
ढिकलो	,,	ढिंगलो	,,
मिरदारन	,,	सिरदारन	,,
राड़-वाड़	,,	राड़-धाड़	,,

गढ़वाली और पंजाबी

गढ़वाली के शब्द पंजाबी भाषा से भी काफी मेल खाते हैं। जैसे—आवाज, आखर, खिस्सा, छन्ना, जूड़ा, पैडा, इथै (पं॰ इत्थे), उथै (पं॰ उत्थे), कुखड़ी, (पंजाबी कुकड़ी), कमौ (पं॰ कमाऊ), बे (पं॰ वे), स्याणी (पं॰ सियाणी) आदि अनेक शब्द हैं।

व्याकरण की भी कुछ समानता मिलती है—क्रियाविशेषण, वर्त्तमान और भूतकाल की क्रिया—उगदो पाणी (पं॰ वगदा पाणी), जांदा था (पं॰ जांदे सन)।

गढ़वाली और गुजराती

इन दोनो भाषाओ में भी अधिक साम्य है। इनमे प्रायः सयुक्त अक्षर पृथक्-पृथक् बोले जाते है। जैसे—मूरत, फरक, पराण, उमर। गढ़वाली मे छ क्रिया अधिक पुरानी है। सख्यावाचक विशेषण और अन्यपुरुष पुल्लिग के विशेषण मे भी समानता है। जैसे – पैलु (गुज० पहेलु), चौथु (गुज० चौथू), पाचु (गु० पांचमु)।

गढ़वाली और सिन्धी

सिन्धी भाषा से भी कुछ शब्द साम्य है। जैसे—उपाद्द (सि० उपदरयी), आखर, गुस्साते, मतार, तरमै, पगत, इन्नी (सि० न्ही), उन्नी (सि० उन्ही), इकलो (सि० हिकलो), मलूक, मत्थी, मेख, बुग्चो (सि० बुज्गो), तपौणो (सि० तपोउण), थेगली (सि० थेगड़ी), उधा (सि० हुद्दी), दिदाली।

गढ़वाली और बँगला

दोनों भाषाओं में अत्यधिक शब्द समानार्थक हैं। अक्षरों के कुछ ही अन्तर से अनेक शब्द बनते हैं। यख (बं० यख), वख (बं० ओखाने), डांस (बं० डाश), तथै (बं० तथाय), बाछरु (बं० बाछुर)। गिनतियो मे भी समानता है—द्वि (बं० दुई), ग्यार, तेर, चौद, उणतरीस (बं० उन्नतरी)। मुहावरे—बुक-बुक फोड़ना, घूम औणू, बाड़ी-सम्बाड़ी।

गढ़वाली और नैपाली

गढ़वाली और नैपाली भाषा मे समानता के कारण ये भी हो सकते हैं कि गोर्ख्याणी के समय मे गोर्ख्या सैनिकों के आने और बसने से भी समानता आ गई हो। गढ़वाल में नैपाल की भाँति गाँवो के साथ कोट शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे—बड़कोट, श्रीकोट चौनकोट आदि। कोट अर्थ महत्ता और बड़प्पन के लिए आता है। खाल शब्द भी दोनों भाषाओ मे प्रयुक्त होता है। नैपाल में भण्डारखाल, गढ़वाल मे पौखाल, जहरीखाल आदि। आफू, उकलनु, का का, पल्ली, फलाम, फटौं, बाट, जणा (नै० जना), तत्तरा (नै० नत्र), मैत (नै० माइत)। क्रिया में दोनों में सर्वथा समानता है। छ, छन, थयो, थियो आदि।

०